Multidisciplinary International Magazine
(Peer-Reviewed)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
Volume 6, Issue 68, December 2020

JANKRITI जनकृति

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
(विशेषज्ञ समीक्षित)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
वर्ष 6, अंक 68, दिसंबर 2020

# निर्मल वर्मा के चिन्तन में प्रकृति और पर्यावरण

**डॉ. बीना जैन**

एसोसिएट प्रोफेसर,हिंदी विभाग,

किरोड़ीमल महाविद्यालय,दिल्ली विश्वविद्यालय।

**सारांश:**

*पर्यावरण का सीधा संबंध प्रकृति से है। आधुनिक युग में प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करने और उसे अर्थोपार्जन का स्रोत मानने के कारण पर्यावरण विश्व के पटल पर उभरने वाला एक गम्भीर संकट है जिसने संपूर्ण मानव जाति के अस्तित्व को खतरे में डाल रखा है। पैसा कमाने की अंधाधुंध दौड़ ने प्रकृति के संतुलन में इतना असंतुलन उत्पन्न कर दिया है कि संपूर्ण विश्व अनेक प्राकृतिक आपदाएं झेल रहा है। निर्मल वर्मा इन सब का कारण आधुनिक सभ्यता को मानते हैं उनके अनुसार आधुनिक सभ्यता और ज्ञान विज्ञान ने ही प्रकृति को परिवर्तनशील और गतिशील रूप प्रदान किया। आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य और प्रकृति को अलग कर दिया जबकि पहले संपूर्ण प्रकृति एक इकाई के रूप में स्वीकृत थी जिसका मनुष्य भी एक हिस्सा था।मनुष्य की भौतिक लिप्सा, प्रकृति, उसके उपादानों और जीव जंतुओं के प्रति असहिष्णुता पूर्ण व्यवहार ही समस्त समस्याओं की जड़ है। निर्मल वर्मा मनुष्य को प्रकृति का अभिन्न अंग मानते हैं।उनके अनुसार पत्थर,नदी,पहाड़, पेड़, मनुष्य में पवित्रता की भावनाएं और धार्मिक संवेदना उत्पन्न करते हैं मनुष्य का समूचा मिथक संस्कार भी प्रकृति से जुड़ा है। प्रकृति न केवल मनुष्य में सौंदर्य बोध वरन देश-प्रेम भी उत्पन्न करने का स्रोत है। भारतीय संस्कृति की समस्त आचार- संहिता नैतिक मूल्य, आस्थाएं, संस्कार एवं संस्कृति प्रकृति से जुड़कर ही विकसित हुई है। भारतीय संस्कृति का विशेष संस्कार रहा है कि उसने कभी मनुष्य को प्रकृति से ऊपर नहीं माना बल्कि प्रकृति और मनुष्य के बीच एक पवित्र और संतुलित संबंध की परिकल्पना की है जहां दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी नहीं एक दूसरे के पोषक हैं। उनके अनुसार आधुनिक औद्योगिक सभ्यता ने मनुष्य के इस संपूर्णता बोध और प्रकृति की पवित्रता दोनों को दूषित कर दिया है। आजादी के बाद विकास के पाश्चात्य मॉडल ने भारत की प्रकृति, उसके हरे-भरे जंगलों को उजाड़ने में विशिष्ट भूमिका निभाई। हजारों को अपने गांव घरों से उन्मूलित होना पड़ा। आदिवासियों को जंगलों से विस्थापित होना पड़ा।पाश्चात्य सभ्यता प्रकृति पर विजय पाने में ही अपना गौरव समझती है। प्रकृति के प्रति उसका संबंध आक्रामक है। निर्मल वर्मा के अनुसार जब तक प्रकृति के विरुद्ध यह हिंसा और आक्रामकता की भावना विद्यमान है तब तक पर्यावरण का संकट दूर नहीं हो सकता। वे औद्योगिक सभ्यता के विकल्प के रूप में गांधी जी द्वारा प्रस्तावित हिंद स्वराज्य की हिमायत करते हैं और भारत के सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना को आधार बनाते हैं उनका विश्वास है कि उन मूल्यों के आलोक में ही विलुप्त होती जा रही मनुष्य की अन्तर्हित सम्भावनाओं को जगाया जा सकता है।*

**प्रमुख शब्द:** *प्रकृति, पर्यावरण, आधुनिक सभ्यता, औद्योगीकरण, भौतिक लिप्सा आक्रामकता उपभोग्य वस्तु, भारतीय संस्कृति, अहिंसा ,सहअस्तित्व ,पवित्रता ,देश प्रेम, संवेदनशीलता*

**शोध प्रविधि:** *प्रस्तुत शोध आलेख में आलोचनात्मक प्रविधि का प्रयोग किया गया है।*

## शोध विस्तार

"कोई भी भविष्य चाहे वह कितना ही सुंदर क्यों ना हो अपने वर्तमान को विकृत करके नहीं बनाया जा सकता"-- निर्मल वर्मा

21वीं शताब्दी का तीसरा दशक चल रहा है। पर्यावरण आज विश्व का सबसे ज्वलंत मुद्दा है। पर्यावरण में उपस्थित प्रदूषण के कारण मनुष्य खतरे के जिस कगार पर पहुंच चुका है वहां से उसका पीछे लौट जाना असंभव हो गया है। प्रकृति को बचाने एवं उसमें संतुलन स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय -अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण गंभीर चिंता और चिंतन का विषय बना हुआ है। न केवल पर्यावरणविद वरन् अनेक लेखकों और विचारकों ने भी इस चिंता में अपनी शिरकत की है।

निर्मल वर्मा भी ऐसे ही संवेदनशील रचनाकार हैं। 'परिंदे' कहानी से प्रसिद्धि पाने वाले व अपनी पहचान अलग से रेखांकित करने वाले कहानीकार निर्मल वर्मा ने निबंध, यात्रा -संस्मरण ,उपन्यास,डायरी इत्यादि गद्य की अन्य विधाओं में भी अपनी गहरी पैठ बनाई है। निर्मल वर्मा के अनुसार 'हर लेखक अपने वर्तमान के संकट और मनुष्य की स्थिति को अपनी चिंताओं से जोड़ कर एक पूरा संसार रचता है। पर्यावरण केवल चिंता का विषय नहीं बल्कि यह संस्कृति के संकट का विषय है और एक लेखक को अनिवार्यतया इन प्रश्नों का सामना करना चाहिए।'[1] निर्मल वर्मा लगातार इन प्रश्नों का सामना करते हैं। वे सम्पूर्ण सृष्टि, प्रकृति, मानव की अवस्थिति ,भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति, धर्म आदि विषयों से टकराते-विचार करते हुए विश्वस्तर पर उपस्थित पर्यावरणीय संकट से जूझते हैं। उन के निबंध उनकी इस चिंता के गवाह है।

यह सम्पूर्ण सृष्टि चर-अचर, जीव- जंतु, प्राणी, कीड़े- मकौड़े, पेड़-पौधे, वनस्पतियां, नदी ,पहाड़ ,झरने ,समुद्र ,पर्वत ,चट्टान एवं स्वयं मनुष्य पञ्च भौतिक तत्त्वों - पृथ्वी,अग्नि,जल,वायु और आकाश का समुच्चय रूप है। इन पञ्च भौतिक तत्त्वों का एक रूप यदि बाह्य प्रकृति है 'तो दूसरा मनुष्य। इन पञ्च तत्त्वों के अभाव में न सृष्टि की परिकल्पना संभव है और न मनुष्य की। मनुष्य प्रकृति का अभिन्न अंग है। प्रकृति ही इस सृष्टि का मूल तत्त्व है।इस सृष्टि के बोध, समस्त ज्ञान एवं चेतना का आधार भी प्रकृति है। इन्हीं से मनुष्य घिरा है। यही मनुष्य का परिवेश है और अपने जीवन यापन के लिए इसी परिवेश में पाए जाने वाले जीव -जंतु, पादप, वायु, जल तथा भूमि पर निर्भर रहता है। इन्हीं से उसका जीवन संभव है। यही पर्यावरण है अर्थात पर्यावरण का सीधा संबंध प्रकृति से और मनुष्य के परिवेश से है। ये सब मिलकर ही पर्यावरण की रचना करते हैं।

यदि पर्यावरण के शाब्दिक अर्थ पर जाएं तो 'पर्यावरण शब्द का निर्माण दो शब्दों से मिलकर हुआ है -'परि' का आशय चारों ओर तथा 'आवरण' का आशय परिवेश है। दूसरे शब्दों में कहें तो वनस्पतियों ,प्राणियों,और मानव

जाति सहित सभी सजीवों और उनके साथ संबंधित भौतिक परिसर को पर्यावरण कहतें हैं। वास्तव में पर्यावरण में वायु ,जल ,भूमि ,पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, मानव और उसकी विविध गतिविधियों के परिणाम आदि सभी का समावेश होता हैं।'[2] इस प्रकार समस्त सृष्टि में चारों ओर जो भी दिखाई देता है या अनुभूत होता है वह सब पर्यावरण का हिस्सा माना जाता है।

भारत में प्राचीन काल से ही पर्यावरण के प्रति सजगता दिखाई देती है। भारतीय संस्कृति में 'जियो और जीने दो' और 'अहिंसा परमो धर्मः' का संदेश मनुष्य के अतिरिक्त प्रकृति के समस्त जीव-जंतुओं,पशु-पक्षियों,पेड़-पौधों, वनस्पतियों इत्यादि के प्रति संवेदनशीलता अभिव्यक्त करते हुए सबके सह- अस्तित्व पर बल देता है। ऋग्वेद के कई सूक्त, रामायण एवं महाभारत के कई आख्यान, संस्कृत- वाङ्गमय, धार्मिक शास्त्र, कला, साहित्य आदि भी पर्यावरण की रक्षा एवं उसके सौंदर्य के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। क्रौंच पक्षी के वध से द्रवित आदि कवि वाल्मीकि के क्रंदन के रूप में निःसृत श्लोक "मा निषाद प्रतिष्ठां शाश्वतीः समाः..." प्रकृति के जीव- जंतुओं के प्रति करुणा की ही अभिव्यक्ति है और अहिंसा का नीति संदेश प्रवाहित करता है। तब से लेकर आधुनिक काल तक कितने ही कवियों और लेखकों ने प्रकृति एवं समस्त जीवों के प्रति अपने प्रेम और उनकी रक्षा को अपनी रचनाधर्मिता का विषय बनाया है।

अनादिकाल से प्रकृति जड़, शाश्वत, सनातन और ईश्वर की देन मानी जाती थी लेकिन विज्ञान ने प्रकृति के अनेक रहस्यों का उद्घाटन कर प्रकृति और सृष्टि को देखने की धारणा को बदल दिया। विज्ञान ने जिस ऐतिहासिक मूल्य को स्थापित किया उसने प्रकृति को परिवर्तनशील और गतिशील बना दिया। 'यूरोप में रेनेसां के बाद जिस मनुष्य केंद्रित संस्कृति का सूत्रपात हुआ उसमें मनुष्य को इस सृष्टि में जीने बसने वाले प्राणियों से न केवल अलग किया बल्कि उनकी तुलना में उसे अधिक श्रेष्ठ और अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक स्वाधीन बनाया। मनुष्य का प्रकृति एवं उसके उपादानों के प्रति एक दायित्व बोध भी अपेक्षित था लेकिन मनुष्य ने उस सब को भूल कर प्रकृति का केवल उपयोगितावादी दृष्टिकोण से इस्तेमाल करना शुरू किया।'[3] 16-17वीं शताब्दियों में यूरोप ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करके अपना औद्योगिक प्रभुत्व स्थापित किया। प्रकृति अपनी स्वायत्तता खोकर केवल एक उपभोग्य शोषित वस्तु में परिणत हो गई।

मनुष्य का इस दुनिया से,अपने समाज से और अपने पर्यावरण या परिवेश से क्या नाता है इन प्रश्नों के उत्तर से ही आचार शास्त्र अथवा नैतिकता जन्म लेती है लेकिन पश्चिमी देशों ने तमाम नैतिकता को दरकिनार कर प्रकृति को केवल अर्थोपार्जन का स्रोत माना। उन्होंने विकास को प्राथमिकता दी और पर्यावरण को नजरअंदाज किया। विकास का पश्चिमी माडल प्रकृति और विकास को अलग -अलग मानता है। उन्होंने प्राकृतिक संसाधनों को पूंजी और प्राकृतिक संपदा को कमोडिटी में बदल दिया। प्रकृति के जंगलों, जल और खनिज पदार्थों को बाजार मूल्य के रूप में देखा जिससे मानव -जाति को संभव बनाने वाले प्राकृतिक तत्त्वों के विनाश की प्रक्रिया बढ़ी। लेकिन प्राकृतिक विनाश से विकास संभव नहीं होता। यूरोप में औद्योगिक क्रांति के साथ ही पर्यावरण संबंधी समस्याएं उत्पन्न हुई

जिसमें समस्त मानवीय मूल्य, संवेदनाएं, सामाजिक-सरोकार, प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति मनुष्य का संयत व्यवहार खोने लगा जिसका भीषण परिणाम हम आज भुगत रहे हैं।

मनुष्य की भोगवादी दौड़ के कारण प्रकृति का संतुलन इतना बिगड़ गया है कि पृथ्वी पर जीवन की परिस्थितियां कठिन से कठिनतर होती जा रही हैं। सम्पूर्ण विश्व अनेक प्राकृतिक आपदाएं झेलने के लिए अभिशप्त है। बाढ़,भूकंप,सूखा,सुनामी, नदियों का प्रदूषण, वातावरण में जहरीली गैसें, तापमान में वृद्धि, मौसमों का बदलना,कैंसर जैसे जानलेवा रोगों का उत्पन्न होना,पशु-पक्षियों की प्रजातियों का लुप्त होना आदि न जाने कितनी समस्याओं से सम्पूर्ण विश्व ग्रस्त है। विश्व स्तर पर संकट बनी कोरोना (कोविड-19 ) महामारी ने साबित कर दिया है कि मनुष्य का अपने परिवेश से खिलवाड़ करने और प्रकृति को अपने से भिन्न एवं परिवर्तनशील मानने के परिणाम घातक ही साबित हो रहे हैं। जीव-जंतुओं और पशु-पक्षियों के प्रति असहिष्णुतापूर्ण हिंसात्मक व्यवहार आज वापस सिद्ध कर रहा है कि मानव और प्रकृति भिन्न -भिन्न सत्ताएं नहीं ;प्रकृति के अस्तित्व से ही यह सृष्टि बची रह सकती है।

निर्मल वर्मा मनुष्य को प्रकृति का अभिन्न अंग मानते हैं। उन्हें खेद है कि आधुनिक सभ्यता मनुष्य और प्रकृति को अलग-अलग मानती है। मनुष्य के इसी दृष्टिकोण ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करनी चाही और अपनी सुविधा, लालच को पूरा करने हेतु उसे परिवर्तित करने की छूट हासिल की। "सामान्यतः मनुष्य को एक अलग इकाई और उसके चारों ओर व्याप्त अन्य समस्त चीजों को उसका पर्यावरण घोषित कर दिया जाता है। किन्तु अभी भी इस धरती पर बहुत सी मानव सभ्यताएं हैं ,जो अपने को पर्यावरण से अलग नहीं मानतीं और उनकी नज़र में समस्त प्रकृति एक ही इकाई है जिसका मनुष्य भी एक हिस्सा है। वस्तुतः मनुष्य को पर्यावरण से अलग मानने वाले वे लोग हैं जो तकनीकी रूप से विकसित हैं और विज्ञान और तकनीक के व्यापक प्रयोग से अपनी प्राकृतिक दशाओं में काफी बदलाव लाने में समर्थ हैं।'[4]

निर्मल वर्मा के अनुसार भारतीय संस्कृति में मनुष्य और प्रकृति ,मनुष्य और उसकी दुनिया एक दूसरे से अलग नहीं थी।' हमारे देश का भौगोलिक चित्र हमारी प्रकृति से बना है। प्रकृति हमारे देश की माँस -मज्जा है। हिमालय से कन्याकुमारी तक फ़ैला हुआ भारत एक सभ्यता का विशिष्ट चिरंतन बोध भी है।. . . यहाँ प्रकृति एक विराट लीला स्थल है, स्वयं अपनी चेतना में स्वायत्त, मनुष्य द्वारा अनुशासित नहीं। पशु ,पक्षी ,नदी,पहाड़ ,देवी ,देवता,मनुष्य के प्रभुत्व के नीचे नहीं प्रकृति के सान्निध्य में बसेरा करते हैं।'[5] यहाँ मनुष्य का आत्म अपने को जीव- जगत की समस्त शक्तियों से अंतर संबंधित पाता है….. वह अनेक जीव-जंतुओं और देवी-देवताओं के सानिध्य में प्रकृति के साथ एक आत्मीय संबंध बना कर जीवनयापन करता है। यही आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय तत्त्व है। यही कारण है कि निर्मल वर्मा पर्यावरण के या प्रकृति के उपकरणों के अंतः संबंधों में भारतीय संस्कृति का बहु केंद्रित सत्य देखते हैं जहां एक को दूसरे से अलग करते ही समूची सभ्यता का ताना-बाना टूटने लगता है। वे कहते हैं, 'हमारे पुरखों ने शताब्दियों पहले खिड़की से जो कुछ भी बाहर देखा था पेड़ों, नदियों, पशुओं और मनुष्यों का एक विराट शाश्वत लैंडस्केप। वही लैंडस्केप मैं भी देखता हूं और पाता हूं कि मैं इस परिदृश्य का महज़ दर्शक नहीं हूं बल्कि

उनके बीच हूं, उनका ही एक अभिन्न अंश हूँ।" [6] उनके अनुसार "आज की सभ्यता का संकट और प्रदूषण उस ऐतिहासिक क्षण से शुरू हो गया था जब मनुष्य प्रकृति से अलग छिटक गया था--यह मानव सभ्यता और मनुष्य की यातना का समान स्रोत है जो आज हमें घसीटकर 'अणु युग ' तक ले आया है।'[7]

निर्मल वर्मा मनुष्य और सृष्टि का अखण्डित सम्बन्ध मानते हैं और उनके पारस्परिक संबंधों को पवित्र मानते है। 'मनुष्य और सृष्टि का संबंध एक ओर सृष्टि को पवित्र बनाता है दूसरी तरफ मनुष्य को संपूर्णता देता है.....प्रकृति के अजीवन्त दिखाई देने वाले उपादान पत्थर, नदी ,पहाड़, पेड़ ऊपर से अजीवन्त दिखाई भले देते हो लेकिन अपने अंतरसंबंधों में वे न केवल पवित्रता का जीवंत गौरव वरन धार्मिक संवेदना भी उत्पन्न करते हैं। दुनिया में किस नदी को यह सौभाग्य प्राप्त है जिसकी परिक्रमा करने में यात्री स्वयं अपने भीतर एक तरह की अटल पवित्रता का स्पर्श पा लेते है।' [8]

प्रकृति मनुष्य में सौन्दर्यानुभूति विकसित करती है। निर्मल वर्मा के अनुसार नदी,पहाड़,झरने अपने में ही सुंदर नहीं होते। वे अपने होने से आसपास की दुनिया को भी एक अलौकिक आभा से आलोकित कर देते हैं। केवल भारतीय परंपरा में रसा -पगा व्यक्ति ही प्रकृति की नैसर्गिक सत्ता को इतने आत्मीय सगेपन और श्रद्धा से देख सकता है। नदी, पहाड़, झरने सिर्फ भूगोल के उपमान मात्र नहीं हैं। वे मनुष्य के समूचे मिथक संस्कारों को अपने में प्रतिबिंबित करते हैं। 'जब मानव और प्रकृति के बीच की विभाजक रेखाएं स्पष्ट नहीं थीं। दोनों एक सार्वभौम जीवन में सहभागी थे। वे परस्पर सहयोग एवं संघर्ष के सूत्रों से बंधे हुए थे और चेतन मानव का मन अज्ञात रूप से प्रकृति की घटनाओं को अपने जीवन की घटनाओं और अनुभवों के माध्यम से समझने का प्रयास किया था, मिथक की रचना उस समय हुई थी।'[9] निर्मल वर्मा मिथक को बाहरी दुनिया से रिश्ता जोड़ने का जरिया मानते हैं।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को पूजनीय स्थान प्राप्त है। निर्मल वर्मा को किसी पत्थर को छूते हुए कोई देवता, नदी का स्पर्श करते ही कोई स्मृति, पहाड़ पर चढ़ते हुए किसी पौराणिक यात्रा की अंतर कथा याद आने लगती है। ये सब उन्हें ऐसे पदचिन्ह मालूम पड़ते हैं जिन पर कदम रखते ही जीवन- यात्रा उन्हें तीर्थ- यात्रा में परिणत होती नजर आती है। मध्यप्रदेश के हृत स्थल में नर्मदा को सहस्त्रधारा में फूटते देख उन्हें वह भारतीय संस्कृति का सबसे उजला प्रतीक जान पड़ता है। निर्मल वर्मा के अनुसार 'गंगा महज एक नदी नहीं जैसे हिमालय सिर्फ एक पहाड़ नहीं। सैकड़ों विश्वासों, आस्थाओं, स्मृतियों और संस्कारों का यह संगम केवल एक ऐसी संस्कृति में संभव हो सकता है जिसमें संपूर्ण मनुष्य की संकल्पना निहित रहती है जिसमें मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे से अलग नहीं थे। वे मानते हैं कि नर्मदा हो या हिमालय जो लोग प्रकृति के सान्निध्य में रहते हैं उन्हें जीवन के गहन सत्य बूझने के लिए किसी शिक्षण संस्थान में जाने की जरूरत नहीं। वह अनमोल रत्न उन्हें पत्थरों में पारस की तरह प्राप्त हो जाते हैं"[10] भारतीय संस्कृति में सभी नदियों को महत्त्व दिया गया है; गंगा, सिंधु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, नर्मदा जैसी नदियों को पवित्र मानकर पूजा की जाती है। पर गंगा सब में श्रेष्ठ है। मानव का कोई भी संस्कार गंगाजल के बिना अपूर्ण है।

निर्मल वर्मा के अनुसार ब्रह्मांड और प्रकृति के प्रति लगाव ही देशभक्ति की भावना को जन्म देता है। किसी स्थान के भूगोल और प्राकृतिक परिवेश से मनुष्य की जातीय स्मृति और संस्कार निर्मित होते हैं। भारतीय संस्कृति प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता और रागात्मक लगाव विकसित करती है और मनुष्य को सृष्टि के बीच जीना सिखाती है। मनुष्य प्रकृति के पेड़ पौधों का अपनी संतान के समान लालन पालन करता आया है प्रत्युत्तर में प्रकृति भी अपनी उदारता का परिचय देती आई है। दोनों सदा से एक दूसरे के पूरक रहे हैं। प्रकृति के मध्य रहते हुए ही भारतीय संस्कृति विकसित हुई है। हमारी समस्त आचार- संहिता, नैतिकता, मूल्य- व्यवस्था प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण पर ही टिकी हुई है। संस्कृत के अनेक श्लोक प्रकृति से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए मानवता का संदेश देते हैं।

उन्हें आधुनिक औद्योगिक सभ्यता से शिकायत है क्योंकि उसने मनुष्य का संपूर्णता बोध और प्रकृति की पवित्रता दोनों को दूषित कर दिया है। उनके अनुसार पाश्चात्य सभ्यता प्रकृति पर विजय पाने में ही अपना गौरव समझती है। प्रकृति के प्रति उसका संबंध आक्रामक है। भारत में भी स्वतंत्रता के बाद नेहरू युग ने विकास के पश्चिमी मॉडल को चुना जो जल्द ही एक सुंदर छलावा साबित हुआ जिससे भारत में भी कमोबेश पर्यावरण की अनेक समस्याएं उत्पन्न होने लगीं और 'विकास की छलनाएं अपने पूरे खोंखलेपन के साथ प्रकट होने लगीं।'[11] आजादी के बाद की विकास योजनाओं ने पाशविक पैमाने पर हजारों को अपने गांव- घर से उन्मूलित किया। जनता को उसके प्राकृतिक परिवेश से ही विलगित कर दिया गया। विकास और औद्योगीकरण के नाम पर उर्वरा भूमि और समृद्ध जंगलों को उजाड़ दिया गया जिसके सहारे शताब्दियों से हजारों वनवासी और किसान अपना भरण-पोषण करते रहे हैं। विकास योजनाओं ने प्रकृति, मनुष्य और संस्कृति के बीच का नाजुक संतुलन नष्ट कर दिया। यही कारण है वे औद्योगीकरण को एक दैत्य- दानव- बलि-देवता के रूप में देखते हैं जो भारतीय परंपरा एवं मूल्यों को अपने पंजों में दबोचता जा रहा है जिससे छुटकारा पाना उन्हें संभव प्रतीत नहीं होता- 'एक ऐसी अति मानवीय शक्ति जो धीरे-धीरे अपने शिकंजे में समूची चराचर सृष्टि को दबोच लेती है।'[12] बीसवीं शताब्दी की औद्योगिक सभ्यता ने मनुष्य जाति पर जिस संकट को उपस्थित किया, आजादी के बाद उसे ही बड़े हर्षोल्लास के साथ अपना लिया गया। औद्योगकरण के राक्षसी तंत्र ने प्रकृति की मर्यादा को नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी , जहां हर पशु- पक्षी, प्राणी को अपनी स्वायत्त गरिमा में जीने का हक होता है।' [12] इसे वे विकासवाद की अंधी पूजा की संज्ञा देते हैं जिसके बीज स्वतंत्रता के बाद बोए गए थे और जिसके विष वृक्ष आज चारों तरफ खड़े दिखाई देते हैं । पर्यावरण के साथ-साथ आदिम संस्कृति भी विकास की भेंट चढ़ जाती है। निर्मल वर्मा आदिवासियों के जंगलों को नष्ट होते देख दुखी होते हैं । उनके अनुसार प्रकृति के साथ आजादी के बाद से लगातार खिलवाड़ किया गया है। प्रगति और औद्योगिक विकास के नशे में आदिवासियों की जीवन प्रणाली को नष्ट किया है । निर्मल वर्मा प्रश्न उपस्थित करते हैं कि' क्या हमें अपने देश की भूमि जन संस्कृति और पर्यावरण की नितांत उपेक्षा करके पश्चिमी औद्योगिक ढांचे की नकल करना जरूरी है?'

विकास के नाम पर चीन के द्वारा तिब्बत में हो रही पर्यावरण दुर्गति से भी निर्मल वर्मा चिंतित होते हैं ।उनके अनुसार उसका दुष्प्रभाव समूची हिमालय श्रृंखला में बसे प्रदेशों के पर्यावरण उसके नदी -नालों उसकी वन्य- संपदा और उसके वायुमंडल पर भी पड़ रहा है। 'वह आणविक अस्त्रों का रेडियो कचरा फेंकने का कूड़ा दान बन गया है। इसके

कारण धीरे-धीरे उन सब नदियों का जल भयानक रूप से दूषित हो गया है जिन का उद्गम स्थल तिब्बत है।'[13] सिंधु, ब्रह्मपुत्र, इरावती आदि नदियां जिन देशों में बहती हैं उनमें भारत और बांग्लादेश जैसे घनी आबादी वाले देश भी हैं औद्योगीकरण की बढ़ती हुई आग से प्रकृति को बचाने के लिए पश्चिमी जर्मनी में शुरू होने वाले हरित आंदोलन की निरर्थकता पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं कि 'जिस समाज में सशस्त्रीकरण इतनी तेजी से हो रहा है कि लाखों करोड़ों डॉलर अणु बमों और आणविक शस्त्रों के निर्माण पर खर्च किया जाता है वहां प्रकृति को प्रदूषण से बचाने का प्रयत्न क्या महज एक मीठा और अवास्तविक स्वप्न नहीं है?उसी तरह इंग्लैंड या सोवियत संघ में अणुबम -विरोधी आंदोलन क्या कभी सफल हो सकेंगे?'[14] निर्मल वर्मा ऐसे विकास से अपनी असहमति दर्ज़ करते हैं।

वे औद्योगिक सभ्यता के विकल्प के रूप में गांधी जी द्वारा प्रस्तावित हिंद स्वराज्य की हिमायत करते हैं और गांधी जी की एक चेतावनी को आधार बनाते हैं- 'यह अनिवार्य नहीं कि पश्चिमी की तकनीकी सभ्यता को हम जोर-जबर्दस्ती अपने भविष्य पर लागू करें और जानबूझकर उन अमानवीय अंतर्विरोधों के शिकार बने जिनसे आज पश्चिमी जगत बुरी तरह ग्रस्त है। यह तर्क निराधार है कि औद्योगिक प्रगति के बिना हमारी गरीबी दूर नहीं हो सकती। गरीब हम पहले भी थे किंतु दरिद्र नहीं। यह दरिद्रता और भयानक विपन्नता उस औद्योगिक प्रगति की देन है जहां एक तरफ आठ मंजिला पांच नक्षत्रीय होटल हैं और दूसरी तरफ स्लम के अंधेरे, सीलन भरे तहखाने।'[15] निर्मल वर्मा कहते हैं कि गांधीजी की उपरोक्त चेतावनी को भुला दिया गया है। अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं कि हमें पश्चिमी औद्योगीकरण की प्रक्रिया को आधार न बनाकर स्वयं अपनी शर्तों और मर्यादाओं के आधार पर औद्योगिक विकास का भारतीय स्वरूप निर्धारित करना चाहिए था।

निर्मल वर्मा के अनुसार जब तक पश्चिमी मनुष्य की मनीषा में प्रकृति के विरुद्ध हिंसा और आक्रामकता की भावना कायम है अर्थात जब तक पश्चिमी संस्कृति के केंद्र में अहिंसा और समूची सृष्टि की पवित्रता जैसे मूल्य प्रतिष्ठित नहीं होते तब तक कोई भी आंदोलन चाहे वह प्रकृति को प्रदूषण से या मनुष्य को अणु बम से बचाने के लिए हो, निरर्थक है। इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि 'एक तरफ हम प्रकृति के विरुद्ध हिंसा बरतते जाएं दूसरी तरफ यह आशा रखें कि मानवता को अपने विरुद्ध हिंसा करने से रोका जा सकता है।' [16]

निर्मल वर्मा भारत को परंपरा संपन्न देश कहते हैं जिसका पर्यावरण से गहरा रिश्ता है, जो उसकी सांस्कृतिक विशिष्टता के साथ जुड़ा है। उनके लिए जंगल, पहाड़, नदी- नाले केवल भौगोलिक वस्तुएं नहीं है बल्कि इन सब में वे प्रतीक और रूपक हैं जिनके सहारे धर्म प्रधान भारतीय संस्कृति अपने साहित्य, अपनी आस्थाओं और अपनी मिथक कथाओं की प्राणवत्ता हासिल करती है। निर्मल वर्मा चिंतित होते हैं कि जब हम किसी जंगल को नष्ट करते हैं किसी नदी को दूषित करते हैं या कोई नदी सूख जाती है या कोई गांव उजड़ जाता है तो वह केवल पर्यावरण की दुर्घटना नहीं होती ; उसके साथ- साथ उसके बीच सांस लेने वाली अनेक कथाएं, प्रथायें, अनुष्ठान ,स्मृतियां और स्वप्न अपने आप मुरझाने लगते हैं। 'लद्दाख, कश्मीर, तिब्बत ,नेपाल सब हिमालय के पर्वतीय अंचल में बसे हुए देश हैं। इन सब की सांस्कृतिक संपदा भी समान है। इसीलिए उनके अनुसार यदि इन देशों की सांस्कृतिक अस्मिता को

अपनी उपेक्षा और चुप्पी के कारण नष्ट होने देते हैं तो वह हमारी नैतिक कायरता होगी और अपनी सांस्कृतिक विरासत के साथ अक्षम्य विश्वासघात भी होगा। वह मानव विज्ञान के सुप्रसिद्ध विद्वान लेवी स्ट्रॉस का हवाला देते हुए कहते हैं कि उन्होंने एक बार कहा था 'जब हम किसी विशिष्ट जीव- पौधे, वृक्ष की नस्ल नष्ट कर देते हैं तो उसे पुनः जीवित नहीं किया जा सकता। वह हमेशा के लिए लुप्त हो जाती है जैसे कभी उसका अस्तित्व रहा ही ना हो।'[17]

निर्मल वर्मा के अनुसार यूरोप में पर्यावरण का प्रश्न मनुष्य और भूगोल के बीच संतुलन बनाए रखने का है लेकिन भारत में यही प्रश्न मनुष्य और उसकी संस्कृति के बीच पारंपरिक संबंध बनाए रखने का हो जाता है। 'भारत की सांस्कृतिक विरासत उन रिश्तों से जीवित होती है जो आदमी को उसकी धरती उसके जंगलों ,नदियों, एक शब्द में कहें तो उसके समूचे परिवेश के साथ जोड़ती है। अतीत का समूचा मिथक -संसार पोथियों में नहीं, इन रिश्तों की अदृश्य लिपि में मौजूद होता है। भारतीय संस्कृति का विशेष संस्कार रहा है कि उसने कभी मनुष्य को प्रकृति से ऊपर नहीं माना बल्कि प्रकृति और मनुष्य के बीच एक ऐसे पवित्र और संतुलित संबंध की परिकल्पना की है जहां दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी नहीं एक दूसरे के पोषक हैं।'[18]

उनके अनुसार पश्चिम में तो पर्यावरण का भीषण संकट उत्पन्न हुआ है लेकिन कितना क्रूर व्यंग्य है कि 'भारत,जो अन्य देशों के लिए कम से कम पर्यावरण के मामले में एक उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत कर सकता था, आज पश्चिम से कहीं ज्यादा निर्मम और नृशंस ढंग से अपनी प्राकृतिक संपदा की नोच-खसोट करने में लगा है।'[19] लेकिन 'पर्यावरण के संरक्षण से ही धरती पर जीवन का संरक्षण हो सकता है, अन्यथा मंगल ग्रह आदि ग्रहों की तरह धरती का जीवन-चक्र भी एक दिन समाप्त हो जायेगा।'[20]

भूमंडलीकरण ने इस प्रक्रिया और प्रवृत्ति में और अधिक इजाफा किया है। निर्मल वर्मा के अनुसार प्रगति और विकास के नाम पर मनुष्य मृग- मरीचिका के पीछे भाग रहा है। समूची प्रकृति और प्राणी -जगत का प्रभुत्व प्राप्त करके, अपने को समूची सृष्टि के केंद्र में अवस्थित करने के प्रयास में धरती पर अपने होने के अर्थ को ही भूल बैठा है 'मनुष्य ने जिस प्रगति की लालसा में प्रकृति को अपना दास बनाया था वही प्रगति आज प्रकृति के विनाश और समूची मानव सभ्यता को आत्म- संहार की ओर ले जा रही है।'[21]

लेकिन इस भयानक स्थिति में भी निर्मल वर्मा उम्मीद का साथ नहीं छोड़ते। उन्हें लगता है कि हम चाहें तो इस विनाश की प्रक्रिया को रोक सकते हैं। उसे एक नितांत नई दिशा में मोड़ सकते हैं। 'समूचे ब्रह्मांड में हमारी धरती ही एकमात्र ऐसी है जो प्रकृति का अंग होते हुए भी मनुष्य के जीवन को ही नहीं समूचे जीव, प्राणी -जगत को संभव बनाती है। मनुष्य प्रकृति का अंग भी है और उसे रूपांतरित करने का उपकरण भी..... भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में जहां पश्चिमी सभ्यता ने लगभग समूची मानवीय चेतना को स्वार्थ ग्रस्त सुविधा भोगी मूल्यों द्वारा आविष्ट कर लिया है, भारतीय संस्कृति ही मेरे विचार में एकमात्र ऐसी वैकल्पिक दृष्टि प्रस्तुत कर सकती है जिसके आलोक में मनुष्य अपनी उन अन्तर्हित संभावनाओं को उजागर कर सके ,जो तेजी से विलुप्त होती जा रही हैं।'[22] वे अंग्रेजी

मार्क्सवादी इतिहासकार ई.पी. टॉप्सन के शब्दों को उद्धृत करते हैं 'भारत सिर्फ महत्वपूर्ण नहीं दुनिया का शायद सबसे महत्वपूर्ण देश है जिस पर सारी दुनिया का भविष्य निर्भर करता है।' [23]

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. दूसरे शब्दों में, निर्मल वर्मा - पृष्ठ 138
2.https://hi.m.wikipedia.org/wiki/पर्यावरण
3. ढलान से उतरते हुए - निर्मल वर्मा – पृष्ठ 90
4. .https://hi.wikipedia.org/wiki/पर्यावरण
5.आदि अंत और आरंभ- निर्मल वर्मा- पृष्ठ-89, 192
6. ढलान से उतरते हुए - पृष्ठ 72
7. कला का जोखिम-निर्मल वर्मा- पृष्ठ 14
8. आदि अंत और आरंभ- निर्मल वर्मा- पृष्ठ 11
9 . पूर्वग्रह -अंक 43- पृष्ठ 27
10 . आदि अंत और आरम्भ-निर्मल वर्मा -पृ 90,101
11 . आदि अंत और आरम्भ -पृ-91
12. ढलान से उतरते हुए निर्मल वर्मा पृष्ठ 110
13. ढलान से उतरते हुए निर्मल वर्मा पृष्ठ 107
14. आदि अंत और आरम्भ -पृ.91
15. शब्द और स्मृति निर्मल वर्मा पृष्ठ 80
16. शताब्दी के ढलते वर्षों में निर्मल वर्मा पृष्ठ 154
17. दूसरे शब्दों में निर्मल वर्मा पृष्ठ 120
18. वही पृष्ठ 120
19. ढलान से उतरते हुए निर्मल वर्मा पृष्ठ 108
20.हिंदी काव्य में पर्यावरण चेतना, राजेंद्र कुमार सिंघवी
http://drrajendrasinghvi.blogspot.com/2016/08
blog-post.html?m=1
21. ढलान से उतरते हुए निर्मल वर्मा पृष्ठ 96
22.आदि अंत और आरंभ- पृष्ठ-79, 86
23.वही -,पृष्ठ -11